

मूल्य शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में श्रीमद्भगवद्गीता में निहित कर्मयोग के अन्तर्गत शैक्षिक मूल्यों का विश्लेषणात्मक अध्ययन।

डॉ आरती आर्य

प्रोफेसर, शोध निर्देशक

बीसीजी शिक्षा महाविद्यालय देवास

सुश्री मेघा पंवार

शोधकर्ता

बीसीजी शिक्षा महाविद्यालय देवास

1.0.0 प्रस्तावना

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

(गीता 2/47)

कर्म करने में ही तेरा अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कम न करने में भी आसक्ति न हो।

अर्जुन की तरह ही हम सब कभी न कभी अनिश्चय की स्थिति में या तो हताश हो जाते हैं या फिर अपनी समस्याओं से उद्विग्न होकर कर्तव्य विमुख हो जाते हैं। उसी अर्जुन के माध्यम से श्री कृष्ण ने सारे संसार को कर्म का ज्ञान दिया था जिसे आत्मसात् करके अर्जुन अपने कर्तव्य पथ पर अपने धर्म का पालन करने के लिए उद्यत हुआ था। भगवान श्री कृष्ण के उपदेश केवल अर्जुन को शिक्षित करने के लिए ही नहीं थे अपितु समस्त मानव जाति को ज्ञान एवं शिक्षा प्रदान करने के लिए कह गए थे।)

1.1.0 शिक्षा

शिक्षा ही सुसंस्कृत मानव को मानसिक, बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक संतुष्टि प्रदान करती है।

"शिक्षा व्यक्ति की उन सभी भीतरी शक्तियों का विकास है जिससे वह अपने वातावरण पर नियंत्रण रख कर अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर सके।"

जॉन ड्यूवी

महर्षि पतंजलि के महाभाष्य नामक ग्रंथ के अनुसार 'शिक्षा वह प्रक्रिया है जो मनुष्य को अपने लौकिक कर्मों को करने के योग्य बनाती है' ।

'आयातो धर्म जिज्ञासा'

अतः शिक्षा मनुष्य की वह प्रक्रिया है जो कर्तव्य रूपी धर्म का पालन सिखाती है तथा जीवन को सुखी बनाती हैं। हमारे प्राचीन धार्मिक ग्रंथों में भी तो जीवन को और सकारात्मक दिशा प्रदान करने हेतु शिक्षा प्रदान की गई है। श्री रामचरितमानस, कुरान, श्री दासबोध, महाभारत, गुरुग्रंथ साहिब, श्रीमद्भगवद्गीता आदि ग्रंथों में भी पग-पग पर शिक्षा द्वारा ही जीवन के समरांगण में मानव कर्म की जटिलताओं को सुलझाने की शिक्षा दी गई है।)

1.2.0 गीता के अनुसार शिक्षा का स्वरूप

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययभीक्षते ।

अविभक्त विभक्तेषु तत्ज्ञानं विद्वसात्त्विकतम् ॥

जिनके द्वारा सभी प्राणियों में केवल एक निर्विकार भाव देखा जाता है तथा विविधता में जहाँ एकता दिखाई देती है उसी को सात्त्विक ज्ञान कहा जाता है।

गीता में कहा गया तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में है फल में नहीं । गीता व्यक्ति को अपना उद्धार अपने कर्मों एवं अपने आचरण से करने का संदेश देती है ।

एतद् पुण्य पापहारं धन्यं दुःख प्रनाशनम्

गीता के अनुसार ज्ञान की व्याख्या इस प्रकार की गई है कि ज्ञान प्राप्ति का लक्ष्य न केवल मनुष्य जगत की एकता को पहचानना है अभी तो संपूर्ण जगत में दिखाई देने वाली भिन्नताओं के अंतराल में छिपे हुए सर्वात्मा की अनुभूति कर्तव्य कर्म से कराना है जो एकमात्र प्रत्यक्ष सत्ता है।

गीता के अनुसार शिक्षा हुआ है जो प्रत्येक व्यक्ति में निहित ब्रह्म अथवा परमात्मा की अनुभूति, यथार्थ सत्य, सत्-चित्-आनंद के रूप में करवाने में सहायक होती है । वास्तविक सत्य के रूप में गीता की शिक्षा मानव को अपने समय के सापेक्ष अपने कर्तव्य धर्म का निष्काम रूप से तथा पूरी निष्ठा के साथ पालन करने का संदेश देती है।

1.3.0 मूल्य का अर्थ:-

मानवीय मूल्य ऐसी आचरण संहिता या सद्गुण समूह है, जिसे अपने संस्कारों के माध्यम से अपना कर मनुष्य अपने निश्चित लक्षण की प्राप्ति हेतु अपनी जीवन पद्धति का निर्माण करता है। मूल्य में मनुष्य के विचार, विश्वास, आस्था, मनोवृत्ति आदि समाहित होते हैं।)

1.4.0 मूल्य की परिभाषा:-

"मूल्य वह चारित्रिक विशेषता है, जो मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और सौंदर्य-बोध की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जाती है। लगभग सभी विचार मूल्यों को अभीष्ट चरित्र को स्वीकार करते हैं"। ~ सी.वी. गुड

"मूल्य एक मानव विश्वास है जिसके आधार पर मनुष्य वरीयता प्रदान करते हुए कार्य करता है"। ~ आलपोर्ट

"मूल्य महत्व के बारे में निर्णय के मापदंड तथा नियम है" यह वह मापदंड है, जिनसे हम चीजों (लोगों, वस्तुओं, विचारों, क्रियाओं तथा परिस्थितियों) के अच्छा, महत्वपूर्ण और वांछनीय होने अथवा खराब, महत्वहीन और तिरस्करणीय होने के बारे में निर्णय करते हैं"। ~ जेम्स पी. शेवर

1.5.0 मूल्य की प्रकृति:-

'मूल्य वे मनक या नैतिक व्यवहार की आचार संहिताएं हैं जो संस्कृति से निकली परंपराओं द्वारा पोषित तथा आत्मचेतना अथवा अंतःकरण द्वारा संरक्षित होते हैं। मानव इनका आधार बनाकर अपनी जीवन शैली का निर्माण करता है और जीवन के आदर्शों को प्राप्त करने का प्रयास करता है।

John-j- Kene

मूल्य की प्रकृति के बारे में तीन मात प्रचलित हैं।

आत्मनिष्ठ मत:-

इस मत के अनुसार मूल्य इच्छा, रुचि, पसंद, मेहनत करने से संकल्प शक्ति, कार्य तथा संतोष जैसे कारकों पर निर्भर होते हैं। इन सभी कारकों के परिणाम स्वरूप व्यक्ति के निजी व्यक्ति जीवन में मूल्य विकसित होते हैं। तथा वह व्यक्ति के अनुभव से अत्यधिक जुड़े रहते हैं।

वस्तुनिष्ठ मत:-

इस मत के अनुसार मूल्य व्यक्ति से स्वतंत्र होते हैं, तथा वह व्यक्ति में निहित नहीं होते उनमें वस्तुनिष्ठ का होती है।

अपेक्षिकीय मत:-

इस मत के पोषक मूल्यों को मूल्य प्रदान करने वाले मानव तथा उसके वातावरण के मध्य एक संबंध मानते हैं। वह मूल्य के अंशत

विवादों जैसे- उत्तरदायित्व जीवन का मूल्य, नियम, तथा मानक, संपत्ति को अपने नैतिक असमंजस्य विवरणों में शामिल किया है। उदाहरणार्थ अंशतः तर्क समझते हैं। मूल्य नियामक तथा संरचनात्मक नियमों के मिलन स्थल है।

1.6.0 गीता में निहित कर्मयोग परिचय:-

मानव चेतना के विकास में कर्म योग की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, कर्मयोग मनुष्य की भावना के विकास का मूलाधार भी है। कर्म योग में कर्मयोगी अपने समस्त कर्मों और उसके फल को भगवान के श्री चरणों में अर्पण कर देता है। ईश्वर में निष्ठा रखकर आसक्ति को दूर करके सफलता या निष्फलता में समान रूप से रहकर कर्म करते रहना ही कर्मयोग कहलाता है।

कर्म के संदर्भ में विभिन्न मत

महर्षि कणाद के अनुसार- "कर्म वह है जो द्रव्य के आश्रित हो, गुण न हो और संयोग तथा विभाग में अनपेक्ष कारण हो"।

अननभट्ट के अनुसार- "कर्म वह है जो सहयोग तथा विभाग में अनपेक्ष कारण हो । सहयोग तो न हो परंतु संयोग या समवायिकरण आवश्य हो" । जीवन शाश्वत, अविरल चेतना का प्रवाह है। शरीर के द्वारा ही जीवन की अभिव्यक्ति होती है और यही अभिव्यक्ति कर्म है। मनुष्य किसी भी क्षण कर्म किए बिना नहीं रह सकता है। कर्म करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

व्यक्ति दो कर्म से कम में प्रदत्त होता है- 1. कुछ पाने का लोभ तथा 2. कुछ खोने का भय। इस प्रकार से कम में प्रदत्त होना कम की अपूर्णता है। तथा यह कर्म की निम्न अवस्था है। लेकिन ज्ञान में होने वाले कर्मों का प्रेरक तत्व स्वयं परमात्मा है। ऐसी अवस्था में कर्ता लोभ व भय से प्रेरित नहीं होता है। बल्कि वह परमात्मा के लिए कर्म करता है तथा अपने आप को पप्रपरमात्मा में समाहित कर देता है।)

1.7.0 गीता में निहित कर्मयोग की अवधारणा –

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। गीता के तृतीय अध्याय का नाम कर्मयोग नामक अध्याय है में श्री कृष्ण अर्जुन को कर्मयोग का संदेश देते हैं। जब अर्जुन श्री कृष्ण से पूछते हैं कि, जानर्दन हे केशव, यदि आप बुद्धि (ज्ञान) को सकाय से श्रेष्ठ समझते हैं, तो फिर आप मुझे इस घोर युद्ध (भयंकर कर्म) में क्यों लगाना चाहते हो?

लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मया नघ।

ज्ञानयोगेन सांख्यानं कर्मयोगेन योगिनाम्॥ ३॥

गीता में कर्म की विस्तार से चर्चा की गयी है एवं कर्म की गति बतलाई गयी है। "गहना कर्मणो गतिः"। कृष्ण कहते हैं कि कर्म को ही जानना चाहिए, अकर्म को भी जानना चाहिए। इस प्रकार गीता में कर्म के जिन प्रकारों की चर्चा आयी है, वे हैं—

- * कर्म, अकर्म, विकर्म
- * आसक्त एवं अनासक्त कर्म
- * निष्काम कर्म
- * नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य कर

गीता के अनुसार शास्त्र विहित कर्मों को ही कर्म कहा जाता है। अकर्म का तात्पर्य है, कर्म का अभाव यानी तुष्णीभाव। इस तुष्णीभाव को ही अकर्म कहा गया है। और विकर्म का अभिप्राय है, "विगतः कर्म यस्य से विकर्म।" जो विहित कर्म निकल गया हो अर्थात् जो शास्त्र विहित कर्म नहीं है।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार अनासक्त भाव से कर्म करना कर्म योग है। कर्म ही पूजा है कर्म अर्थात् कार्य करना। यह कार्य शारीरिक व मानसिक रूप से हो सकता है। हम जो करते हैं, सोचते हैं या कहते हैं इस प्रकार सबका प्रभाव बनता है जो एक निश्चित समय पर प्रतिफल के रूप में मिलता है। जो प्रतिफल मिलता है उसे हम भाग्य कहते हैं जो पूर्व कर्म होते हैं वह संस्कार के रूप में इकट्ठा होते हैं और यह संस्कार हमें कर्मफल के रूप में प्राप्त होता है। यदि हम वर्तमान समय में फलों के प्रति आसक्ति से रहित होकर कर्म करते हैं तो चित्त में संस्कार नहीं होते हैं। तथा संख्या के दग्धबीज होने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस प्रकार कर्मयोग के द्वारा मोक्ष संभव होता है। कर्म करना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। तथा कर्म के बिना मनुष्य का जीवित रहना असंभव है।

श्रीकृष्ण कहते हैं, कि हे, अर्जुन ! तू शास्त्रविहित कर्मों को कर क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है, तथा कर्म न करने से तेरा शरीर निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा।

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।

शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥

गीता 3/8

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

तदर्थकर्मकौन्तेयमुक्तसंगःसमाचर॥

गीता 3/9

श्रीकृष्ण कहते हैं, कि आसक्तिरहित होकर सदा कर्तव्य कर्म को भलीभांति करना चाहिए क्योंकि आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।

असक्तो ह्यचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि - हे अर्जुन! मुझ अन्तर्यामी परमात्मा में लगे हुए चित्त द्वारा सम्पूर्ण कर्मों को मुझमें अर्पण करके आशारहित ममता रहित और सन्तापरहित युद्ध कर।

“मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।

निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥

गीता - 3/30

इसके पश्चात श्री कृष्ण कहते हैं, कि - जो कोई मनुष्य दोषदृष्टि से रहित और श्रद्धायुक्त होकर मेरे इस मत का सदा अनुसरण करते हैं वे भी संपूर्ण कर्मों से छूट जाते हैं।

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।

श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यते तेऽपि कर्माभिः॥

गीता 3 / 31षष

इस प्रकार श्रीकृष्ण संपूर्ण कर्मों को अर्पित करने की बात कहते हैं। क्योंकि जब हम कर्मफल को ईश्वर को समर्पित कर देते हैं तो संपूर्ण कर्म बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

नटि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत।

कार्यते हवशः कर्म सर्वः प्रकृति जैर्गुणे।

गीता 3.5

इस प्रकार श्रीकृष्ण समस्त कर्मों को समर्पित करने की बात कहते हैं क्योंकि जब हम कर्मफल को ईश्वर को समर्पित कर देते हैं तो समस्त कर्म बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

1.8.0 कर्मयोग में निहित शैक्षिक मूल्यों की प्रासंगिकता –

न कर्मणामनारम्भानैष्कर्म्यं पुरुषोऽस्नुते।

न च सन्न्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ (3/4)

ना तो कर्म से विमुख होकर कोई कर्मफल से छुटकारा पा सकता और न केवल सन्यास से सिद्धि प्राप्त की जा सकती है अथवा जिसने कर्मों का आरम्भ ही नहीं किया वह योगी निष्कर्मता को कैसे प्राप्त हो सकता है? ऐसे कर्म जो फल उत्पन्न नहीं करते वे ही अकर्म कहलाते हैं। इसलिए कर्मों को ही अकर्म बनाया जा सकता है।

कर्मों को ही कर्म किए बिना ही मनुष्य निष्कर्मता को (ज्ञान को) नहीं अनुभव करता- कर्म न करने से ज्ञान प्राप्त नहीं होता और न केवल त्याग करने से मनुष्य सिद्धि को प्राप्त करता है। कर्तव्य कर्मों को न करने से मनुष्य को ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। नियत कर्तव्यों के पालन करने के पश्चात् ही मनुष्य के अनुभव तथा ज्ञान की वृद्धि होती है। चिन्तन और मनन आदि तो मानस कम है मानसिक और शारीरिक क्रिया के बिना ज्ञान होना संभव है कर्महीन जन्म सन्यासी भी नहीं हो सकता है सर्वोत्तम सन्यास तो निष्कर्म कर्म में कर्म में कर्म योग में निस्वार्थ भाव से अपने कर्मों को ईश्वर के चरणों में समर्पित कर देना है।

1.9.0 शैक्षिक निहितार्थ-

1. कर्मयोग विद्यार्थी के आत्मज्ञान को जागृत करता है इसके बाद वे न केवल अपने वर्तमान जीवन के उद्देश्यों को बल्कि जीवन के बाद की अपनी गति का पूर्वाभास प्राप्त कर सकते हैं इस योग में कर्म के द्वारा ईश्वर की प्राप्ति की जाती है
3. कर्म योग से शिक्षा का अर्थ है कि- विद्यार्थी अपने कर्तव्य को निस्वार्थ भाव से पूरा करने के द्वारा ज्ञान और समझ हासिल करना।
4. कर्म योग सिखाने को प्रत्यक्ष अनुभव के माध्यम से प्रोत्साहित करता है समर्पण और निस्वार्थ भाव से कर्म करने से विद्यार्थी अपने बारे में अपने आसपास की दुनिया के बारे में और स्वयं कर्म की प्रकृति के बारे में गहन ज्ञान प्राप्त करते हैं।
6. कर्म योग दूसरों की सेवा पर बल देता है अपने कार्यों को किसी बड़े अच्छे के लिए समर्पित करके करुणा सहानुभूति और समाज में योगदान करने के महत्व को सिखाते हैं

7. कर्मयोग के ज्ञान के माध्यम से विद्यार्थियों में जिम्मेदारी लेना कर्तव्य को पूरा करना और कठिनाइयों का सामना करना सीखना है यह व्यक्तिगत और व्यावसायिक जीवन में उपयोगी कौशल है।
8. कर्मयोग त्याग और निस्वार्थ भाव पर बल देता है जिससे विद्यार्थियों में आत्म संयम का विकास होता है।
10. कर्मयोग के इस ज्ञान की समझ विद्यार्थियों को आत्म अनुशासन में रखती है जो विद्यार्थियों का आभूषण है।
11. कर्मयोग के अनुसार विद्यार्थियों को हमेशा अपने सभी कार्यों में अपना सर्वश्रेष्ठ देना चाहिए और बाकी की को छोड़ देना चाहिए।

सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि कर्मों के संदर्भ में व्यक्तित्व विकास के मार्ग पर बढ़ते हुए व्यक्ति के जीवन के गुणवत्ता का आधार क्या हो गीता के प्रकार चिंतन में इसका स्पष्ट मार्गदर्शन मिलता है कर्मयोग भगवद्गीता के प्रमुख विषय में से एक है या क्रिया का विज्ञान है इसके आध्यात्मिक और दार्शनिक संदेश के अलावा इसके कई शिक्षण भी हैं कर्म योग के ज्ञान शिक्षकों को निष्काम कर्म बनाता है या विद्यार्थियों को अनुयाई नहीं चाहिए नेता बनने में सक्षम बनता है यह हमेशा शिक्षा और छात्रों को जीवन की जटिलताओं के बावजूद कर्तव्य पर ध्यान केन्द्रित रखने के लिए प्रोत्साहित करता है भाषा सिखाने या कोई ज्ञान प्राप्त करने में मन प्रबंधन है जो उनके जीवन के दानों को संभालने के लिए दबाब में काम करने में सक्षम बनता है

1.10.0 शैक्षिक निहितार्थ:-

गीता शिक्षा का आनंद भंडार है गीता के सभी श्लोक मानव को कोई न कोई नीति संगत शिक्षा अवश्य प्रदान करते हैं गीता के ज्ञान से विद्यार्थी में कार्य करने की प्रवृत्ति बढ़ने के साथ ही उसका मानसिक विकास भी होगा वह जीवन के गुण अर्थों को समझने लगेगा और जब वह यह जान लेगा की आत्मा अमर है और शरीर नश्वान तब वह अपने अमूल्य जीवन को सरकार की ओर प्रवाहित करेगा विद्यार्थी एवं शिक्षकों में कार्य करने की प्रवृत्ति बढ़ेगी निराशा दूर होगी तथा आशा का संचार होगा वह अपने कर्तव्य स्थल पर निष्ठा पूर्वक काम करने की और प्रवृत्त होगा। जिससे आने वाले परिणाम आशाजनक, संतोषजनक, तथा आनंद से परिपूर्ण होते हैं।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ (गीता 2-47)

कर्मयोग हर काल, परिस्थिति तथा जीवन के हर क्षेत्र में अत्यन्त आवश्यक है। कर्मयोग, एक प्रकार का श्रेष्ठ योग है। जो कर्म के गूढ़ रहस्य का प्रतिपादन करता है। यह कर्मबन्धन से ऊपर उठकर भव सागर से पार होने का साधन है। कर्मयोग हर सृष्टि से महत्वपूर्ण है। वर्तमान समय में कर्मयोग जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। यह समाज व राष्ट्र के उत्थान के लिये भी अत्यन्त अनिवार्य है। हमेशा मनुष्य आलस्य तथा निष्कर्मण्यता के कारण कर्म में प्रवृत्त नहीं हो पाता है और यदि कर्म में प्रवृत्त हो गया तो भी उसके फल के प्रति आसक्त रहता है। आसक्ति के कारण वह अपने कार्य में सम्पूर्ण समर्पित भाव से प्रवृत्त नहीं हो पाता है। इसी कारण से वह अपने आत्मविकास तथा समाज व राष्ट्र के विकास में योगदान नहीं कर पाता है। अतः कर्मयोग, आत्मविकास व राष्ट्र के विकास हेतु अत्यन्त आवश्यक है। कर्मयोग ज्ञान योग के सभी हजारों गुणा अधिक प्रशस्त है क्योंकि ज्ञान योग की सिद्धि कर्मयोग के द्वारा ही होती है। यह ब्रह्म भी कर्मयोग से ही उत्पन्न होते हैं। कर्मयोग के बिना तो ज्ञानयोग की भी सत्ता नहीं है।

1.11.0 उपसंहार –

गीता एक आध्यात्मिक निदान ग्रंथ है, इसमें भौतिक युद्ध के वर्णन को निमित्त बनाकर प्रत्येक मनुष्य के हृदय में निरंतर चलने वाले द्वंद्व युद्ध का वर्णन किया गया है। श्रीमद् भगवद् गीता के प्रथम अध्याय में अर्जुन युद्ध के पूर्व बंधु-बोधव, गुरु मित्रों आदि को देखकर भगवान श्री कृष्ण से कहते हैं - कि हे अच्युत! मुझे ऐसे धन की कोई कामना नहीं जिससे मैं अपने लोगों को आहत करके प्राप्त करूं। इससे तो भिषारन करके जीवन यापन करना उचित है।

वर्तमान समय में अर्जुन जैसी स्थिति प्रत्येक मानव की होती है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक मानव दण्डात्मक प्रक्रिया से गुजरकर मानसिक तनाव का शिकार होते हैं। यह तनाव ही जीवन के अवसाद का कारण बनता है। मानव की मानसिक स्थिरता उसे किसी भी निर्णय को लेने में बाधा उत्पन्न करती है और बहुत अधिकांश से वशिभूत होकर व कर्मबंधन की ओर अग्रसर होते हैं। हर मानव जीवन के सिद्धांत में फंसा होता है कि वह वर्तमान स्थिति में क्या कदम उठाए। एक मार्ग वह है जिसमें उसका अपना स्वार्थ है, सुख है और लाभ है तथा दूसरा वह जिसमें त्याग, समर्पण, दया या परोपकार की भावना है। क्योंकि मानव एक सामाजिक प्राणी है तथा सामाजिक स्थिति आर्थिक लाभ, सम्मान और सुख की अतिशय चाह मानव को स्वार्थ पूर्ण कर्मों की ओर प्रवृत्त करती है।

यह भौतिक सुख के विषय है, उसे अपने कर्तव्य पथ से भटकाते हैं तथा उसमें पवित्रता की भावना की जगह स्वार्थ की भावना बढ़ाते हैं।

वर्तमान में मानव में त्याग सपर्मण, परोपकार जैसे संस्कारों का सर्वथा आभाव है। गीता अध्ययन जीवन में इन्हीं संस्कारों का निर्माण करवाती है। गीता का कर्मयोग केवल अपूर्व दर्शन ही नहीं अपितु इसमें गहरा मनोविज्ञान भी छिपा है। कर्मयोग, आधुनिक, मनोविज्ञान के साथ-साथ मानव को वर्तमान की जीवन रचना पद्धति में साधुता के प्रभाव को भी समन्वित करता है।

संदर्भित ग्रंथ सूची

1. Breebacher John .S. (1969) Modern Philosophies of education New York-Mcgraw HillBook Company
2. ओड लक्ष्मी के.- 'शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि' प्रकाशक:- राजस्थान ग्रंथ अकादमी. जयपुर (राजस्थान)
3. पुस्तक- 'कल्याण' गोरखपुर: गीता प्रेस, 1988
4. राय पारसनाथ (2011)- 'अनुसंधान परिचय' प्रकाशन:- लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा
5. शर्मा रामनाथ-भारतीय नीति शास्त्र: मेरठ: केदारनाथ रामनाथ,
6. शर्मा एस.एन.-'द एजुकेशनल विजन ऑफ श्रीमद्भगवद्गीता' आगरा: एच.पी.भार्गव बुक हाउस, 2002
7. श्रीवास्तव एस.एन (2008) - 'भारतीय शिक्षा मनोविज्ञान' लखनऊ: भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका
8. स्वामी प्रभुपाद ए.सी. भक्ति वेदान्त- 'श्रीमद्भगवद्गीता' मुंबई भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट, हरे कृष्ण धाम, जुहू, 1990
9. तिलक बालगंगाधर- श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य' प्रकाशन-नारायण पेठ, केसरी ऑफिस, पूना सिटी (महाराष्ट्र)
10. सरस्वती, शिवानंद 2001 कर्मयोग साधना, उत्तरांचल: दिव्य जीवन संघ